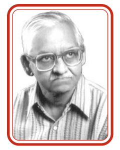

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-26 सितम्बर-2016 अंक-9

ध्यान शिविर में आप सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

दि० 10, 11 व 12 सितम्बर, 2016 (शनिवार, रविवार, सोमवार)

पंजाबी धर्मशाला, राजगुरु मार्केट (आर्य बाजार), हिसार

अपने अहंकार का दिया बुझाओ

इंसान अपने अहंकार का दीया जलाकर खड़ा रहता है,
भगवान के प्यार की चांदनी बाहर इंतजार करती रहती है।
जिस दिन वह अपने अहंकार का दीया बुझा देता है,
अपनी बुद्धि को छोड़ देता है,
अपने आपको भगवान के सहारे छोड़ देता है,
उस दिन भगवान की कृपा की चांदनी
अपने आप अंदर प्रवेश कर जाती है।
क्योंकि वह तो सब देख रही होती है कि
कब तू अपना अहंकार छोड़ेगा? कब तू विनम्र होगा?
कब तू सीधा सरल बनेगा?

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

परमपिता को याद कर

- श्री बनीसिंह जांगड़ा (मो० 094160-10123)

परमपिता को याद कर, जो है सबका पालनहार।
परमपिता परमात्मा ही, करते सब का बेड़ा पार॥

नाम हैं अनेक उसके, जो मन चाहे लिया कर।
योग में समाधि लगा, झरता अमृत पिया कर॥टेक॥
मिलेंगे प्रभु जी आन, सच्चे मन से करो पुकार।
परमपिता परमात्मा ही, करते सबका बेड़ा पार॥

सत्संग की आधी घड़ी, आधी से भी आध सही।
दया दीनदयाल की, कर देगी उजयार वही॥टेक॥
सबका मालिक एक है, कर उसके बंदो से प्यार।
परमपिता परमात्मा ही, करते सबका बेड़ा पार॥

नैया डगमग डोलती को, देता वही सहारा है।
रंक से राजा बने जो, उसी ने उबारा है॥टेक॥
वही मांझी, वहीं नैया, बनता है वही पतवार।
परमपिता परमात्मा ही, करते सबका बेड़ा पार॥

मन बुद्धि और जीवात्मा को, शुद्ध बना ले ध्यान से।
ज्ञान का दीपक जगा कर, नाम जपो दिल जान से॥टेक॥
निर्मल मन हो जाएगा, मिट जाएगा अंधकार।
परमपिता परमात्मा ही, करते सबका बेड़ा पार॥

क्या लेकर जग आया था, क्या लेकर अब जाएगा?
मुट्ठी बांधे आया था, अब हाथ पसारे जाएगा।॥टेक॥
झूठी कमाई छोड़कर, भर झोली सच्चा धन करतार।
परमपिता परमात्मा ही, करते सबका बेड़ा पार॥

रूहे इन्सानियत

✍ श्री रामलाल नाशा

SCO-176, Red Square Mkt., Hisar

1. **तमाम उमर खुद ही की गुत्थियां सुलझाता रहा,**
खार न दिल को चुभें, गुलों से भी कतराता रहा।
खुद को महफ़ूज़ रखा, हर हदों से हमने,
मगर उमर के इस दौर में फिर भी पछताता रहा।
पछतावा ही मेरी जिन्दगी का बसा है,
सच तो यह है, कि यह हर किसी का किस्सा है।
रहते वक्त कौन कब जागता है ?
ये तो बीती जवानी का हिस्सा है।।

रूहे इन्सानियत	= इन्सानियत के आत्मा सम्बन्धी		
खार	= कांटे		
महफ़ूज़	= सुरक्षित	हद	= सीमा
दौर	= समय	उमर	= आयु
बसा	= इकठ	किस्सा	= कहानी

भावार्थ :- सारी आयु तो यूं ही गंवा दी; और बुढ़ापे में आकर बीमारियों इत्यादि के कारण पछताता रहा। काश जवानी में ही कुछ अच्छा कर गुजरता।

2. **छोड़ बाहर को, मन को देख,**
असली है जो, उस धन को देख।
क्यों भटके है, मन्दिर मस्जिद?
खुद के भीतर, फ़न को देख।।

फ़न = शक्ल

3. **कहां ढूंढता है? तेरे अन्दर तेरा खज़ाना है,**
मन्दिर, मस्जिद, गिरजा, कहीं न उसका ठिकाना है।
किसी बुत खाने में कहां रहता है?
जिसने भी पाया, अपने अन्दर ही पाया है।।

खज़ाना = धन-दौलत (कस्तूरी)
बुतखाना = मूर्तियों का स्थापित स्थान

भावार्थ :

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे वन मांही।
ऐसे घट घट में राम हैं, दुनिया देखे नांही॥ ❑

जैसा चाहें बन सकते हैं हम

✍ महर्षि श्री महेश योगी

जीवन के आंतरिक मूल्य और बाहरी संसार का आनन्द, दोनों का समन्वय होना चाहिए। दोनों पक्ष हमारे लिए उपस्थित हैं - हम जैसा चाहें बन सकते हैं, जिसका चाहें उसका आनन्द ले सकते हैं। हमारे समक्ष बैंक का वैभव भी है और बाजार की महत्ता भी। यदि हम सारे समय बाजार में रहेंगे, तो जेब खाली हो जायेगी। इससे तनाव उत्पन्न होगा। आपको सारा दिन बैंक में रहने की आवश्यकता नहीं है। केवल पांच मिनट ही बैंक में रहकर, आप सम्पन्न हो जाते हैं।

केवल भीतर गोता लगायें।

कुछ मिनट भीतर सत्-चित्-आनन्द के साम्राज्य में रहकर, फिर बाहरी संसार के साम्राज्य में आ जायें। दोनों का आनन्द लेना है। दोनों के अपने मूल्य हैं। बाहरी विभिन्नता के संसार का अपना मूल्य है और आन्तरिक आत्मिक क्षेत्र के अनन्त 'आनन्द' का अपना मूल्य है।

दोनों ही जीवन के दो पक्ष हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है।

एक सरल युक्ति है – मन को अन्तर्मुखी करने की। यह अन्तर्मुखी होना सरल और स्वाभाविक है। अधिक आनन्द के क्षेत्र में जाना, सबके लिए बिल्कुल स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

हर व्यक्ति अधिक आनन्द प्राप्त करना चाहता है।

थोड़े आनन्द के क्षेत्र से अधिक आनन्द के क्षेत्र की ओर, मन सरलता से चला जाता है। क्योंकि अधिक आनन्द की इच्छा उसमें पहले से ही विद्यमान है। यदि अधिक आनन्द का क्षेत्र है; और वहां जाने की कोई युक्ति है – तो मन वहां जाने के लिए उत्सुक तो है ही।

वहीं अपने अन्तरतम् में आत्मा का साम्राज्य है।

कोई नई इच्छा करने की आवश्यकता नहीं है। बात केवल इतनी ही है कि वह नहीं जानता कि–वह जीवन का; और अधिक आनन्द उपभोग कर सकता है। व्यावहारिक जीवन में मनुष्य बहुत थका हुआ होता है। वह एक वस्तु से दूसरी की ओर आनन्द के लिए ही जाता है, परन्तु जो आनन्द उसे मिलता है – वह उसके सुख की खोज को संतुष्ट करने के लिए पर्याप्त नहीं है। सुख की खोज को संतुष्ट करने के समान, संसार में और कोई आकर्षण नहीं है।

मन अधिक; और अधिक आनन्द प्राप्त करना चाहता है।

मनुष्य की यह इच्छा करना उसका उचित अधिकार है। प्रत्येक मनुष्य को जीवन में अधिकतम आनन्द लेना चाहिए। व्यवहार क्षेत्र में भिन्न–भिन्न प्रकार के आनन्द (दृश्य, श्रवण, गन्ध और स्वाद आदि), हमारे उपभोग करने के लिए संसार में हैं।

समत्व का शाश्वत जीवन हमारे भीतर है।

वह सर्वव्यापी है। सभी विभिन्नताओं में समाया हुआ है।

यही जीवन हमें जीना चाहिए। अखण्ड आनन्द की चेतना हमारे भीतर है।

इसका समावेश हमारे जीवन में संसार के विभिन्न पदार्थों के अनुभवों के बीच में स्वभावत: होना चाहिए।

होनी और करनी

✍ श्री रमेश कुमार अरोड़ा (09255640384)

इक बून्द से राख की मुट्ठी तक, बस इतनी कहानी तेरी है॥टेक॥
ना बचपन था, न बुढ़ापा होगा, ना ही जवानी तेरी है॥१॥

अबदल ! तू आत्मा है, जान जरा तू शरीर नहीं, जो बदलता है।
न अहं, न ही मन है तू, जिसमें परी जैसी चंचलता है।
सुख, सहजता–शीलता एवं पावनता, निशानी तेरी है॥२॥

दिन खाय बिताया है तूने : क्या रात भी सो के गंवाये गा?
अब भी न लगी लौ प्रभु ध्यान में, तो अंत समय पछताएगा।
जब काल का कोई वक्त नहीं, तब तू क्यों लगाए देरी है?३॥

आ! चल ऐ मन, प्रभु चरनन में, अब धूनी वहीं रमाएंगे।
रखकर मस्तक चौखट पर, हम अपना भाग्य जगाएंगे।
गुरुद्वार से नहीं उठेंगे, कह देंगे यह ही तमन्ना हमारी है॥४॥

हर व्यक्ति इस सत्य को मानता है कि होनी सर्व शक्तिशाली है। कभी भी, कहीं भी ; कुछ भी हो सकता है। होनी सुखदायी और दुखदायी दोनों होती है। ऐसा इसलिये होता है ; क्योंकि जीवन में कर्म की दो दिशाएं हैं–

(1) जीव के उत्थान की दिशा; और

(2) जीव के पत्न की दिशा।

उत्थान की दिशा पर, जीवन सुख की ओर बढ़ता है। और पतन की ओर कर्म होने से; जीवन दु:ख की ओर अग्रसर होता है। जब जीवन दुख की ओर अग्रसर होता है; तब समाज होनी को अनहोनी कहने लगता है। अच्छे और खराब के आधार पर, पुण्य और पाप के आधार पर और; दूसरों को सुख और दुख देने के आधार पर; अलग अलग आध्यात्मिक गुरुओं ने समाज में अलग अलग कर्मों की व्याख्या की है।

शक्ति या ज्ञान; मात्र गुरु से मिलना है।

गुरु; भाव से परे क्षेत्र में है, अर्थात् बुद्धि से परे क्षेत्र में है। इस क्षेत्र की शक्ति बुद्धि के आधार पर प्राप्त करना असम्भव है। कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्धि से परे क्षेत्र में मन का विचरण; वो कर्म है, जो हमें समय बीतने के साथ साथ जीवन को अनन्त क्षेत्रों में शक्तिशाली बनाता चला जाएगा। बुद्धि से परे होने के कारण; ऐसे कर्मों का आधार 'होनी' होगा। अर्थात् 'करनी' के माध्यम से हम वहां तक पहुंच ही नहीं सकते; जहां हमें होनी ले जा सकती है।

होनी का आधार ही; ध्यान (Meditation) अथवा ईश्वर का समर्पन है।❑

बच्चे; कच्चे घड़े के समान

✍ आचार्य श्री राम सुफल शास्त्री

बच्चे; कच्चे घड़े के समान होते हैं। कच्चे घड़े में जो चाहें-चित्रकारी कर सकते हैं। उसी तरह शिक्षक व अभिभावक बच्चे को; जैसा चाहें बना सकते हैं। आज के आधुनिक युग में बच्चे तेजी से पाश्चात्य संस्कृति की ओर बढ़ रहे हैं। जो हमारी संस्कृति के लिए खतरा बनता जा रहा है। इसका एक ही कारण है कि इन बच्चों को प्राचीन भारतीय संस्कृति व सभ्यता के उत्तम संस्कारों से वंचित रखा गया है।

अच्छे संस्कारों का अभाव ही, बच्चों को दिशाहीन कर रहा है।

बच्चों में हो; आध्यात्मिक ज्ञान

आज भौतिकवादी युग में बच्चे अपने रास्ते से भटकते जा रहे हैं। माता पिता अपने बच्चों को आध्यात्मिक ज्ञान दें, ताकि एक अच्छे समाज का निर्माण किया जा सके। भगवान का वास वहीं होता है; जहां ईमानदारी और प्रेम होता है। बच्चों में नैतिक गुण माता पिता ही भर सकते हैं। बच्चे की पहली गुरु, मां ही होती है तथा बड़ा होने पर उसका गुरु अध्यापक होता है। समाज में आज अच्छे गुरुओं की कमी है; इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने विवेक में झांक कर कदम उठाना चाहिए। आजकल की शिक्षा पद्धति, न तो बालक को शारीरिक दृष्टि से सक्षम

बनाती है, न ही मानसिक संतुलन बनाए रखती है और न ही; उसे समाज का एक सुसभ्य, सच्चरित्र, निष्ठावान और उत्तरदायी व्यक्ति बनाती है।

आध्यामिक दृष्टि से तो मानव पूर्णतया अनभिज्ञ है। मानवता अपना अस्तित्व खोज रही है और बालक अपना बाल्यकाल खो चुका है। भौतिक सुखों की प्राप्ति की इस आपाधापी में; बचपन जैसे नदारद हो गया है।

बचपन जल्दी प्रौढ़ हो रहा है एवं कई तरह के मानसिक तनावों से ग्रस्त होता जा रहा है। मनोचिकित्सक से जानें तो बच्चों में अवसाद, अपराधी प्रवृत्तियां और व्यवहार में आने वाले परिवर्तन बढ़ते जा रहे हैं।

इन सबसे बचने के लिए आवश्यक है - उन्हें बचपन में जीने दें।

परन्तु आगे जाकर इन परिस्थितियों का सामना करने के लिए उन्हें शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से परिपूर्ण बनाना होगा और यहीं से दैनंदिन जीवन में साधना का महत्व परिलक्षित होता है। **साधना की शुरूआत हम अभी से कर सकते हैं।** कम उम्र में साधना की आदत होने पर बालक बड़ा होकर आत्मविश्वास, आत्मतृप्ति, आत्मसंयम एवं आत्मत्याग जैसे गुणों से परिपूर्ण होगा। साधना के कई सौपान हैं, जैसे -

ध्यान का पहला चरण है-धारणा।

घंटों ध्यान में बैठने की आवश्यकता नहीं है, केवल 3 बार आधा आधा घंटा ध्यान ही पर्याप्त है। ध्यान करते समय ऊट पटांग विचार आएंगे आने दें।

विद्यालय की अपेक्षाएं, माता-पिता एवं शिक्षकों की अपेक्षाएं तथा स्पर्धात्मक शिक्षा की इस दौड़ धूप में; परीक्षा के दिनों में बालक का तनाव बढ़ जाता है। ऐसे समय वह केवल ध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा ही मानसिक तनाव से मुक्ति पा सकता है। ऐसा करने से ही बुद्धि की कुशग्रता में वृद्धि, स्मरण शक्ति एवं आत्म विश्वास का बढ़ना तथा विपरीत परिस्थितियों में मन का संतुलन न खोना; सम्भव है। ❑

(1936-2009)

मन, ध्यान और प्रकृति

डॉ० शम्भूनाथ

मन एक ऐसा अस्तित्व है; जो अपने में पिरोई हुई आत्मशक्ति की मदद से सारी सृष्टि में भ्रमण करने में सक्षम है। सृष्टि के हर बिन्दु तक वह जाने में सक्षम है। सृष्टि दो भागों में विभाजित है।

शरीर के बाहर जिसे ब्रह्माण्ड कहते हैं और

शरीर के अन्दर जिसे पिण्ड कहते हैं।

ब्रह्माण्ड इन्द्रियों द्वारा बुद्धि के माध्यम से या 'मैं' द्वारा पहचाना जाता है। ब्रह्म ने जीव को तीन अस्तित्व प्रदान किए हैं – मन, बुद्धि और शरीर। बाहर के संसार में (अर्थात् बुद्धि की दुनिया में), मन बुद्धि के साथ ही रहता है। यदि हम मन की तुलना किसी घोड़े से करें – तो बुद्धि लगाम की भांति काम करती है। मन और बुद्धि दोनों एक दूसरे के साथ इस प्रकार रहते हैं कि जीवन को वे अलग अलग दिखायी ही नहीं पड़ते।

> **जब दो वस्तुएं मिल जाती हैं - तब तीसरी वस्तु उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार मन और बुद्धि मिलने से 'मैं' (Ego) उत्पन्न हो जाता है। अर्थात् 'मैं' में मन और बुद्धि दोनों रहते हैं।**

परन्तु यदि मन, शरीर के अन्दर भ्रमण करें; अर्थात् पिण्ड में – जो बुद्धि से परे का क्षेत्र है और इन्द्रियों से भी परे है। तब पिण्ड में 'मैं' का अस्तित्व सम्भव नहीं होगा। स्पष्ट है कि मन के पास विचरण के दो क्षेत्र हैं; पिण्ड और ब्रह्माण्ड।

मन का विचरण; ही 'कर्म' है और; मन का विचरण ही 'ध्यान' है।

इस तरह हम देखते हैं कि अलग अलग क्षेत्रों में मन का विचरण

अलग अलग क्षेत्रों का ध्यान है।

ब्रह्माण्ड अनन्त सीमित पहलुओं में बंटा है।

मन जब भी ब्रह्माण्ड में भ्रमण करेगा, वह बुद्धि के साथ शरीर के बाहर के किसी

न किसी पहलू के क्षेत्र में भ्रमण करेगा; और यही उस क्षेत्र का 'ध्यान' होगा। भ्रमण का क्षेत्र बदलते ही – पहले क्षेत्र का ध्यान समाप्त हो जाता है; और दूसरे पहलू का ध्यान आरंभ हो जाता है। यदि पहले भ्रमण का क्षेत्र, पिण्ड में है और दूसरे भ्रमण का क्षेत्र, ब्रह्माण्ड के क्षेत्र का है; तब हम महसूस करते हैं कि पहले

मन का भ्रमण था, परन्तु 'मैं' नहीं था।

जब तक 'मैं' नहीं था; ध्यान अन्दर का था।

और जब 'मैं' आ गया; तब अन्दर का ध्यान टूट गया

और बाहर का ध्यान आरंभ हो गया।

हम नित्य दिन भर बाहरी जीवन के अलग अलग पहलुओं मे परिश्रम करते करते निद्रा की ओर अग्रसर होने लगते हैं। परन्तु जब थकावट के कारण हम बिस्तर पर लेटते हैं–तब मन में रहता है कि हम थक गए हैं; और अब हमें लेटना ही है। परन्तु लेटने के पश्चात्

> **कब निद्रा आरंभ हो गई, किसी को पता नहीं चलता। हम चाहे जितने समय तक सुषुप्ति की अवस्था में रहें, हमें पता नहीं रहता कि हम निद्रा में हैं। यही प्रमाण है कि जब तक मैं निद्रा में था; अर्थात् 'मैं' तो था ही नहीं; उस समय तक भ्रमण आन्तरिक जगत का था। निद्रा में रहते रहते कब स्वप्न शुरू हुए; इसका भी किसी को पता नहीं चलता। कारण मात्र यही है कि हमारे 'मैं' का न होना ही; आन्तरिक क्षेत्र में भ्रमण का प्रतीक है। मात्र मन का भ्रमण ही ध्यान है। जब स्वप्न शुरू हुआ, तो भी मुझे पता नहीं कि; मैं स्वप्न देख रहा हूं।**

मुझे तो तब पता चला, जब स्वप्न समाप्त हुआ और इन्द्रिय जगत की जागृति शुरू हुई। इन्द्रिय जगत की जागृति के साथ हमारा 'मैं' भी जागृत हो गया। यद्यपि उसके पहले वह भी सुषुप्ति अवस्था में था।

> **'मैं' के जागृत होते ही इन्द्रिय जगत के अलग अलग पहलुओं में भ्रमण; अर्थात् ध्यान आरंभ हो गया और आन्तरिक जगत में भ्रमण,**

अर्थात् 'ध्यान' समाप्त हो गया।

अपनी इसी अनुभूति को सन्त कबीर ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है –

प्रेम गली अति साँकरी, ता में दोउ न समाय।

जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि था मैं नाहीं॥

द्वैत जगत में प्रेम और द्वेष एक दूसरे के विलोम हैं। होनी एक है; करनी अनन्त हैं। एक होनी में अनन्त करनी समायी हुई हैं। जिस प्रकार से एक ब्रह्म में अनन्त प्रकार के जीव समाए हुए हैं।

लेखक ने हमेशा होनी को ही ब्रह्म बताया है। यह हर व्यक्ति की मान्यता है कि होनी किसी का पक्षपात नहीं करती। होनी के लिए सभी व्यक्ति एक समान हैं। उसे किसी से द्वेष हो ही नहीं सकता। जहां द्वेष शून्य है; वहां केवल प्रेम-अर्थात् पूर्ण प्रेम है।

इसीलिए उपरोक्त पंक्तियों में सन्त कबीर ने होनी के क्षेत्र को प्रेम गली कहा है। यह प्रेम गली; होनी का क्षेत्र होने के कारण इन्द्रिय, बुद्धि और 'मैं' से परे का क्षेत्र है; और हरि की शक्ति का सागर है। इसलिए जब मन इस क्षेत्र में प्रवेश करता है; तब बुद्धि से परे होने के कारण, वहां 'मैं' नहीं होता। 'मैं' केवल वहीं होता है; जहां करनी होती है। इस तरह अनुभव करना आसान है कि

ध्यान के अभ्यास में रत साधक; बार बार होनी के क्षेत्र में डूब कर, होनी की शक्ति अपने में पिरोकर; 'मैं' को प्रदान करता है। इस प्रकार मनुष्य का 'मैं' उच्च स्तर की चेतना में प्रवेश करता है।

ऐसी चेतनाओं के जीवन में धीरे धीरे करनी की कमी होने लगती है। क्योंकि उसकी इच्छाओं की पूर्ति से सम्बन्धित कार्य स्वयं 'होनी' करने लगती है। ऐसा वैसे ही होता है; जैसे 'होनी की शक्ति' वनस्पति जगत के बीज से सम्बन्धित, पेड़ों की रचना कर देती है।

ब्रह्म मात्र एक है। भावातीत क्षेत्र में वह निर्गुण निराकार है। पराक्षेत्र में उसका स्वरूप 'होनी की शक्ति', के रूप में है। पराजगत होनी की शक्ति का सागर है। और भावातीत क्षेत्र ब्रह्म तत्व का सागर

है। ब्रह्मतत्व, जब मन में पिरोता है; तब ब्रह्म 'होनी की शक्ति', के रूप में प्रकट होता है। स्वयं ब्रह्म 'होनी की शक्ति', के रूप में प्रकट हो रहा है। इसीलिए 'होनी' में – अखण्ड ज्ञान है, अखण्ड क्रिया शक्ति है; और अखण्ड से जुड़ी हुई हर शक्ति है – या यह कहें कि हर शक्ति अखण्ड है।

इसीलिए लेखक ने हमेशा समझाया कि मात्र मन का विचरण; 'होनी', के क्षेत्र में मनुष्य को अखण्ड आनन्द, अखण्ड शक्ति (इच्छा पूर्ति की शक्ति), अखण्ड ज्ञान, अखण्ड प्रेम और अखण्ड स्वास्थ्य प्रदान करने में सक्षम है।

शरीर के अन्दर का संसार दो क्षेत्रों में बंटा हुआ है।

भावों का क्षेत्र और भावातीत क्षेत्र।

हर व्यक्ति का यह अनुभव है कि उसके अन्दर एक भावों का सागर है; जिसे इन्द्रियों की मदद से महसूस नहीं किया जा सकता, यद्यपि बिना इन्द्रियों के महसूस हो सकता है। यही आन्तरिक क्षेत्र के विचारों का सागर (दूसरे शब्दों में पराजगत की पहचान) है। इस संसार से सूक्ष्म संसार भी है। अर्थात्

भावों से परे भी एक अनन्त तक फैला हुआ संसार है। यह सूक्ष्मतम और शक्तिशाली क्षेत्र है। जो कुछ भी है – वह मात्र इसका प्रदान किया हुआ है; और यही ब्रह्म है। ब्रह्म; ब्रह्मतत्व का सागर है।

ब्रह्म से प्रकृति उत्पन्न हुई। मन; अपने में 'होनी की शक्ति', पिरोकर, प्रकृति के क्षेत्र में वास करता है; तो सन्तुष्ट रहता है। मात्र विचरण के समय पिराई हुई ब्रह्म की शक्ति की कमी में; असंतुष्टि उत्पन्न होती है। प्रकृति अनन्त की देन है। अत: प्रकृति में जो कुछ भी है, वह भी अनन्त है। हम यह भी जानते हैं कि

क्रियाओं के क्षेत्र में अनन्त का रूप हमेशा एक चक्र होता है। कहने का अर्थ है कि मात्र चक्र ही अनन्त है; और मात्र कर्म ही सब कुछ देने में समर्थ है।

चाहे पराक्षेत्र के देवी देवताओं को देने का कार्य हो; या द्वैत जगत के वायुमंडल को शुद्ध करने का कार्य हो। या वायुमंडल के भिन्न भिन्न प्राकृतिक अस्तित्वों को,

जैसे – सूरज, चन्द्र, अनन्त तारा गण, पृथ्वी, वायु, अग्नि आदि शक्तियों को देने का कार्य हो; सब कुछ मन – कर्म के माध्यम से देता है। और मन द्वारा कर्म, पल भर के लिए भी रुक नहीं सकता। काल चक्र को भी, स्वयं मन शक्ति प्रदान करता है।

सतयुग में अधिकतर व्यक्तियों के मन; प्राकृतिक अस्तित्वों को परा से पराजगत से, होनी की शक्ति लाकर, प्रदान करने में सिद्ध होते हैं। यही कारण है कि सतयुग में पृथ्वी की जनसंख्या बहुत कम होती है।

बदलते हुए युग के साथ मनुष्यों के मन की सिद्धियां, कम शक्तिशाली होने लगती हैं। और ब्रह्म तो 'स्वयं द्वारा रचित, होनी का संसार', अर्थात् ब्रह्माण्ड और पराजगत को 'होनी की शक्ति', अपने अंशों द्वारा ही प्रदान करानी है। इसलिए ज्यों ज्यों मनुष्यों के मन की शक्ति घटती है; त्यों त्यों पृथ्वी पर जनसंख्या बढ़ती है। और घोर कलयुग आते आते; स्वयं मनुष्य, मनुष्य की बढ़ती हुई जनसंख्या से घबड़ाने लगता है। अब साधकगण भली भांति समझ सकते हैं कि समाज की जनसंख्या भी 'होनी' के अधीन है।

परिवार नियोजन जैसे कार्यक्रम, विफल होने का कारण यह है कि 'होनी' करनी पर हावी है।

प्रकृति में; प्रकृति द्वारा सारे कार्यक्रम, अनन्त काल से चलते आ रहे हैं; और अनन्त काल तक चलते रहेंगे। क्योंकि प्रकृति अनन्त है; और उसके कार्यक्रम भी अनन्त हैं।

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता

द्वैत जगत में, मात्र चक्र अनन्त होते हैं। चक्र के अतिरिक्त; बाकी सब सीमाओं में समाप्त हो जाते हैं। इस ब्रह्माण्ड के लालन-पालन हेतु अनन्त यज्ञ प्रकृति में होते रहते हैं : जैसे रात-दिन, मौसम का बदलना, पृथ्वी का घूमना, जीव के आवागमन का चक्र, आकाश के अनन्त तारागणों की गतिविधियां, वनस्पति जगत की गतिविधियां, आदि। सब कुछ मात्र तरह-तरह के जीवन को चलाने के

लिए ही प्रकृति ने उत्पन्न किए। और यह सब हमारे अनुभव में है कि उपरोक्त प्राकृतिक यज्ञों की गतिविधियां चक्रों में ही रहती हैं; और इसीलिए इनकी आयु भी अनन्त काल की ही रहती हैं। उपरोक्त उदाहरण शरीर के बाहर के उदाहरण हैं। परन्तु शास्त्र हमें दर्शाता है कि –

यथा पिण्डे, तथा ब्रह्माण्डे

मन पिण्ड का एक अस्तित्व है; और यही अस्तित्व जीवन का मूल आधार है। इसका भ्रमण भी हमेशा चक्र में ही रहता है। सृष्टि तीन क्षेत्रों में बंटी है। एक क्षेत्र, इन्द्रिय जगत, शरीर के बाहर है; और दूसरा क्षेत्र : पराजगत और 'परा से पराजगत', शरीर के अन्दर है।

मन का भ्रमण इन तीनों क्षेत्रों से बने चक्र में होना आवश्यक है। वरना जीव का जीवन संभव नहीं रहेगा।

इस चक्र में भ्रमण करते करते; जिनका मन शरीर के बाहर अधिक रहने लगता है (अर्थात् स्थूल क्षेत्र के कर्मों में अधिक व्यस्त रहता है), उसमें स्थूल क्षेत्र को अनुभव करने की शक्ति तो बनी रहती है; परन्तु आयु बढ़ने के साथ साथ उसकी सूक्ष्म जगत में भ्रमण की अनुभव शक्ति (चेतना) घटती ही चली जाती है।

ज्यों ज्यों स्थूल क्षेत्र में भ्रमण का समय बढ़ता है; उसकी आयु कम होती जाती है; और जीवन के विषय में गलत धारणाएं बढ़ती जाती हैं। धारणाएं स्थूल क्षेत्र के कर्मों की आधार हैं। जब जीवन की धारणाएं ही गलत रहती हैं; तो स्थूल कर्म गलत होना स्वाभाविक है।

परन्तु यदि मनुष्य यह मायावी धारणा, धारण कर ले कि मात्र; अधिक से अधिक पैसा अर्जित करना ही जीवन है; तो इस मायावी धारणा के फलस्वरूप स्थूल जगत के कर्म भी मायावी ही होंगे। धारणा तो यह होगी कि अर्जित धन, उसे जीवन का सुख प्रदान करे। परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत होगी। ऐसे मायावी धारणा वाले व्यक्ति द्वारा अर्जित धन; जीवन को सुख प्रदान करने की बजाय, दु:ख प्रदान करने लग जाएगा। ऐसा ही कलयुग में हो रहा है।

ऐसा युग; जिसमें अधिकतर व्यक्तियों का मन शरीर के अन्दर भ्रमण करे (यद्यपि कुछ समय तो वह बाहर भ्रमण करेगा ही), तो उसकी आयु बढ़ती ही चली जाएगी। उसकी जीवन की धारणाएं भी माया की परिधि से बाहर आने लगेंगी। ऐसी धारणाओं का आधार माया न होकर; सत् होगा। ऐसी धारणाओं पर आधारित कर्म; जीवन को जीवन का सुख देने में सक्षम होंगी। काल चक्र में जब ऐसा युग आता है; तब समाज उसे सतयुग कहता है। सबसे अधिक आयु सतयुग के मनुष्यों की थी। सबसे कम जनसंख्या भी इसी युग में थी। इस युग के मनुष्य जितने संतोषी और सुखी जीवन व्यतीत करने वाले थे; उतना किसी दूसरे युग में नहीं होते।

बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ समाज में स्थूल जगत की व्यस्तता बढ़ती है। धीरे धीरे गलत धारणाएं; और इन धारणाओं के आधार पर गलत कर्म समाज में बढ़ने लगते हैं। ये गलत कर्म बुद्धि द्वारा कम नहीं किए जा सकते। इसीलिए कलयुग में प्रयास बढ़ता हुआ ही दीखता है। मनुष्य ध्यान करे या न करे। ध्यान न करने वाले मनुष्य जब इन्द्रिय जगत के कर्मों में थक जाते हैं; तब वे निद्रा हेतु बिस्तर बिछा कर लेट जाते हैं।

उन्हें कभी यह पता ही नहीं चल पाया कि वे कब सुषुप्ति को प्राप्त हो गए। कुछ भी पता न चलने की अनुभूति; भाव से परे क्षेत्र में चले जाने की ही अनुभूति है। ब्रह्मतत्व के सागर में कुछ देर रहने से मन में कुछ ब्रह्मतत्व पिरोते हैं; और ब्रह्मतत्व पिरोने से कुछ चेतना जागृत हो जाती है। और फिर से मन भ्रमण करने योग्य हो जाता है। स्वप्न की अनुभूति, पराजगत में विचरण की अनुभूति है। स्वप्न में रहते हुए कुछ समय पश्चात् निद्रा समाप्त हो जाती है। निद्रा समाप्त होते ही, इन्द्रिय जगत का अस्तित्व उसका 'मैं', सुषुप्ति अवस्था से जागृति में आ जाता है।

इस तरह ध्यान न करने वाले व्यक्तियों का मन भी, चक्र में ही भ्रमण करता है। परन्तु इन्द्रिय जगत में भ्रमण का समय अधिक होता है; और आन्तरिक जगत में

भ्रमण करने का समय आयु बढ़ने के साथ घटता ही चला जाता है।

आन्तरिक जगत में भ्रमण का समय बढ़े; और इन्द्रिय जगत में भ्रमण का समय घटे : जिससे उसके जीवन काल का सुख और आयु बढ़े। ज्ञानी व्यक्तियों में जागृत अवस्था में इस चक्र में भ्रमण हेतु; एकांत में, अंधेरे में, कुछ बिछा कर, सुविधाजनक आसन पर बैठकर, एक बार इष्ट देव को याद करके मन को स्वतन्त्र छोड़ देने की सलाह दी जाती है। इस तरह से कम से कम आधे घंटे के लिए, 2-3 बार बैठने का अभ्यास (Meditation) **करने से चेत अवस्था में; इस चक्र में भ्रमण के साथ साथ आन्तरिक क्षेत्र में भ्रमण का समय भी बढ़ने लगेगा; और इन्द्रिय जगत में भ्रमण का समय घटने लगेगा। यह आन्तरिक क्षेत्र की चेतना; जागृत करने का रास्ता है, जो कि सूक्ष्म स्तर की चेतना होने के कारण, बाह्य जगत की चेतना से उच्च स्तर की चेतना है।**

ज्यों ज्यों अभ्यास बढ़ता है; मनुष्य आन्तरिक क्षेत्र की उच्च चेतनाओं को प्राप्त हो जाता है। और निद्रा, स्वप्न और इन्द्रिय जगत की चेतनाओं से निर्मित चेतनाओं के मायावी चक्र से धीरे धीरे बाहर आने लगता है। और लम्बे अभ्यास के बाद मुक्त हो जाता है; अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

सन्तोष परम धन; लालच का अन्त नहीं

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग (099918-46415)

कहते हैं - सन्तोष परम धन है; लालच का अन्त नहीं।

''गोधन, गजधन बाजि धन और रतन धन खानि।

जब आवत सन्तोष धन, सब धन धुरि समानि॥''

पर वह परम धन आएगा कहां से?

वह हमें कहीं बाहर से मिलने का नहीं;

यह अन्दर का खजाना है। इसलिए अन्दर गोता खाकर ही इसे लाना पड़ेगा।

अन्दर जाना, कोई कठिन भी नहीं – बहुत सरल है। इसके लिए हमें थोड़ा 'ध्यान का अभ्यास' करना है। हम सब; और काम तो दिन भर करते हैं, परन्तु जो असली धन का खजाना है – भगवान् (भगवान की शक्ति); बस उनसे कुछ पल बैठकर मुलाकात नहीं करते।

भगवान से मुलाकात को ही 'ध्यान' कहते हैं।

ध्यान; अर्थात् विचार शून्य मन।

जब मन विचार शून्य होता है – तो एक ऊर्जा हमारे अन्दर आती है, जिससे हमारा जीवन आनन्दमय, शक्तिमय, सुखमय और स्वस्थ – अर्थात् भगवान के सभी गुण –अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड शक्ति, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड आनन्द एवं अखण्ड प्रेम; धीरे धीरे हमारे अन्दर प्रगट होने लगते है।

उसी को ही सन्तोष-परम-धन कहा है।

ध्यान विधि :- ध्यान की विधि अति सरल और सहज है। इसको बच्चा, जवान और बूढ़ा – कोई भी आराम से (कोई उम्र हो, कोई जगह हो), किया जा सकता है। हमें किसी सुख आसन में, जो हमारे लिए आरामदायक हो – हाथों पैरों को क्रास कर लें तो अच्छा है। क्योंकि 10% ऊर्जा हाथों की, 10% पैरों की; और 80% आंखों की – जो ऊर्जा बाहर जाती हैं;

उसे बचाकर हम उसका लाभ उठा लेंगे।

आंखें तो हमें बन्द करनी ही हैं।

हरेक आदमी को अपनी उम्र के हिसाब से – 10 साल का 10 मिनट, 60 साल का 60 मिनट, ध्यान के लिए बैठना है। परन्तु आरम्भ में इतना नहीं हो पाता – तो कम से कम जितनी देर बैठ सको, अवश्य बैठना आरम्भ करो। आप पलंग या कुर्सी पर बैठ सकते हैं। नीचे बैठो – तो गर्म आसन लगाकर-अन्यथा ऊर्जा Earth हो जाएगी। यहां तक कि हम ध्यान का अभ्यास सफर करते हुए भी कर सकते हैं। एक बार राम का नाम मन ही मन लेकर, हमें बैठ जाना है। जो होता है –होने देना है। बस यही ध्यान करने की क्रिया है। है न कितना सरल और सहज?

नींद हमारे शरीर के लिए वरदान है –

जो प्रकृति से हमें उपहार स्वरूप मिली है॥

परन्तु ध्यान एक घन्टे का; 6 घन्टे की नींद से ज्यादा ऊर्जा देता है। ध्यान एक ऐसा उपहार है – जो अपने लिए तो काम करता ही है; इससे दूसरों को भी बहुत लाभ पहुंचता है।

खुद को शान्त व दूसरों को लाभ देने का यह सीधा, सरल और सहज रास्ता है।

ध्यान के लाभ ही लाभ हैं। हानि कोई नहीं है। मन शान्त होने लगेगा – तो बिमारियां भागने लगेंगी। जहां शान्ति और स्वास्थ्य होंगे–वहां बुद्धि का विकास होगा। स्मरण शक्ति, संकल्प शक्ति, संबंधों में तालमेल और सबसे बड़ा – कि

हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है?

वह स्पष्ट होने लगता है। बेकार की बातें – जो हम सोचते हैं, बोलते हैं या आलस्य में समय नष्ट करते हैं; अर्थात् हमारे अवगुण – सद्‌गुणों में परिवर्तित हो जाते हैं और हमें पता भी नहीं चलता।

40 दिन तक नियम से आप दो बार तो अवश्य बैठो ही।

हो सके तो तीन बार – फिर देखो परिणाम; सन्तोष और धन की वर्षा आप पर कैसे होने लगती है? कुछ मांगना नहीं पड़ता और सब अपने आप मिलने लगता है। मैंने सुना है कि

वर्षा की पहली बूंद केले पर पड़े – तो कपूर; सींप के मुंह में जाए तो मोती और सांप के मुंह में जाए तो मणि।

अगर हम इसी सिद्धान्त (Theory) को लें या समझें; तो भी यही लगता है कि हमें अपने को इस काबिल बनाना है कि भगवान की कृपा रूपी बूंद हमारे अन्दर जाए–तो सन्तोष रूपी धन से लबालब भर जाएं। खुद भी जी भरके पीएं; और दूसरों को भी जी भर के बांटें। बांटने से हमेशा बढ़ता है–घटता नहीं।

उम्मीद करती हूं-भविष्य में आप सब इस धन से लबालब भर चुके होंगे और खूब आनन्द लूट रहे होंगे। ❑

अंतर्मुखी होना ही, आनन्द का स्रोत

—डॉ० बलदेव राज नाशा

अधिकांश लोगों से आज पूछा जाए कि; कैसे हैं?
तो जवाब मिलेगा - क्या बताएं? बस चल रहा है;
और न जाने कितने दिन और झेलने हैं?
ये ऐसे लोग हैं - जो दुःख को हमेशा साथ लेकर चलते हैं।
बहुत सारे लोगों की राय यह रहती है कि -
हमारे आज के दौर में मानव जीवन में अनगिनत दुःख हैं;
इसलिए लोग इस जीवन से परेशान हैं।

क्या मानव जीवन में बहुत सारे दुःख और; केवल दो चार खुशियां हैं? या फिर सत्य कुछ और ही है? अगर हम अपने अन्तर्मन को ध्यान से टटोलें तो रहस्य से पर्दा उठने लगता है। जीवन हमें खुशी और गम महसूस करने के कई मौके देता है, लेकिन हमारी मानसिक प्रवृति कुछ ऐसी है कि -

हम दुःखों को गले लगा लेते हैं और खुशी से दूर भागते हैं।
इसलिए हमें यह मानव जीवन पहाड़ के समान लगने लगता है।
अगर हम अपनी सोच को बदल दें, तो -
हमें रोज अपार आनन्द (Bliss) का अनुभव हो सकता है।
हम इस सोच को कैसे बदले?

खुशी, जीवन की परिस्थितियों पर निर्भर नहीं है। सुख और दुःख तो जीवन में धूप छांव के समान आते जाते रहते हैं। हम चाह कर भी कई सारी परिस्थितियों को बदल नहीं सकते। लेकिन हम अपने मन के विचारों को बदल सकते हैं। हम चाहें तो सारे दुःखों से ऊपर उठ सकते हैं।

सम्पूर्ण विश्व में ईश्वर की चेतना को महसूस करें,
तो कोई भी दुःख बड़ा नहीं लगेगा।

आनन्द अथवा सुख-सन्तोष, समृद्धि, सब कुछ पाने के लिए-केवल और केवल अन्तर्मुखी होना ही है। अपने अन्दर जाकर अपने को जानने का सबसे सरल उपाय, सहज ध्यान ही है। दूसरों के कहने पर मैं कभी भी नहीं मान सकता कि; भगवान को पाने का कोई और रास्ता हो सकता है?

मुझे अपने अनुभव पर ही पक्का विश्वास है।

दूसरी बात यह है कि ध्यान के लिए मन को कहीं लगाने की कोशिश करने पर, कभी लग ही नहीं सकता। मन को आजाद (Relax) छोड़कर एकान्त में कुछ भी कोशिश न करने पर, मन अपने आप आनन्द (ईश्वर) के क्षेत्र में चला जाता है।

इसे कहते हैं कि ध्यान लगता है - लगाया नहीं जाता।

मैं सत्संग में कई बार कह देता हूं; ईश्वर सब का भला करो - परन्तु पहला नम्बर मेरा हो। इस बात को आज ध्यान माला पुस्तक में पढ़ा।

निज हित में परहित जुड़े।

सहज ध्यान करने वाले साधक में सबसे पहले अपने में ही सुख-समृद्धि-आनन्द, सन्तोष और शान्ति आ जाते हैं। फिर यही सब कुछ परिवार और वातावरण; सबमें फैल जाते हैं। इसी से मुझे खुशी हुई कि 'पहला नम्बर, मेरा हो' - बिलकुल ठीक है।

ध्यान साधना द्वारा ईश्वर से शक्ति, ज्ञान, आनन्द, प्रेम, कार, कोठी, धन आदि; प्राप्त करना अच्छी बात है - परन्तु ध्यान साधना द्वारा परोपकार (देवताओं की पूजा) करके -

अपना लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति ही रखना, सर्वोत्तम बात है।
ईश्वर प्राप्ति से, उसके या सारे संसार के हम मालिक बन जाते हैं।

कुछ वरिष्ठ साधक, लोगों को ध्यान (अर्थात् ईश्वर को पाने की राह) दिखाते व सिखाते हैं। वे वरिष्ठ साधक धन्य हैं - जो दूसरों को (स्वयं ध्यान में लगे हुए), अपनी योग्यताओं को शुद्ध ध्यान साधना व ईश्वर प्राप्ति में लगाते हैं। उनकी

दृढ़ता इसी में रहती है कि; हमें तो सिवाय ईश्वर-प्राप्ति-लक्ष्य के, दूसरा कोई बड़े से बड़ा प्रलोभन देना ही नहीं। आप का लक्ष्य सदा परमात्मा की प्राप्ति का होना चाहिए। यह लक्ष्य होने पर सभी देवी देवता, ग्रह, संसार और प्रकृति आदि आपकी परमात्मा की प्राप्ति में सहायक बन जाते हैं। ईश्वर की शक्ति बढ़ने पर सबकी सेवा और आदर, हमारे चाहने मात्र से होने लग जाता है।

भगवान का संग होने से उनके गुण - अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड शक्ति, अखण्ड प्रेम, अखण्ड ज्ञान और अखण्ड आनन्द; हमारे अन्दर भी आ जाते हैं। हम केवल सोचने मात्र से ही अपना और दूसरों का कल्याण कर सकते हैं।

अनुभूति : प्रातः स्नान करके बड़े मजे से निश्चित होकर ध्यान के लिए बैठ गया। किन्तु यह क्या? 5-7 मिनट के बाद बेचैन हो गया। बहुत चाहने पर भी ध्यान छोड़कर उठना पड़ा। घड़ी पर देखा तो -

डेढ़ घंटा बीत चुका था। समझते देर न लगी। कारण कि बैठते ही तुरन्त अन्दर ईश्वर के क्षेत्र (समाधि) में चला गया था। निर्गुण निराकार क्षेत्र में जाते ही - किसी को समय, स्थान, सुख दुःख और हानि लाभ का पता ही नहीं चलता है। इसे शून्य में जाना भी कहा जाता है। इसलिए आज मुझे भी डेढ़ घंटे का पता ही नहीं चला।

केवल ध्यान से पहले के 5-7 मिनट को ही मैं अनुभव कर पाया। फिर ध्यान टूटते ही, शरीर को लगातार बैठने की अनुभूति होनी ही थी। घड़ी देखकर पूरा विश्वास भी हो गया ।

प्रश्न : परिवार में बटवारे के बाद मेरा व्यापार ठप हो गया है। बहुत परिश्रम करने पर भी सुधार नहीं हो रहा। घर का खर्चा चलना कठिन हो रहा है।

उत्तर : अपना भरपूर प्रयास करते हुए भी भगवान का सहयोग लो। प्रातः, दोपहर और सायं; आंखें बन्द करके एकान्त में चुप चाप ध्यान के लिए बैठो। बीच बीच में प्रभु से प्रार्थना करो कि मेरे व्यापार में बरकत हो।

प्रभु तुम्हारी प्रार्थना अवश्य पूरी करेंगे - तब तुम कह उठोगे

मुझे तुमने दाता बहुत कुछ दिया है, तेरा शुक्रिया है, तेरा शुक्रिया है।

इसके बाद यदि तुम ध्यान साधना में लगे रहो तो-आरम्भ की सकाम ध्यान साधना से बहुत कुछ मिलेगा और संतुष्टि भी मिलेगी। बाद में पूर्ण संतुष्टि मिलेगी। पूर्ण कामनाओं की पूर्ति होने के कारण-इच्छा निवृत्ति, मुक्ति एवं मोक्ष तक प्राप्त हो जाता है।

प्रभु प्यारे से जिसका संबंध है,

उसे हर दम आनन्द ही आनन्द है।

श्री केशव गर्ग ने अपने अनुभवों में बताया कि परीक्षा में बहुत अंक आने से पत्रकारों ने इसका कारण पूछा। मैंने उत्तर दिया कि मैं प्रातः और सायं-दो तीन बार ध्यान के लिए बैठता हूं। इससे अन्दर विराजमान ईश्वर की शक्ति मेरे मन में भर जाती है। वही ईश्वर की शक्ति, अर्थात् ईश्वर-हमेशा मेरे साथ रहता है। ईश्वर मुझे जैसा निर्देश देता है - मैं वैसा ही बड़ी लग्न, उत्साहपूर्वक और परिश्रम से करता हूं। बहुत अधिक बुद्धि का प्रयोग नहीं करना पड़ता। इससे कभी तनाव नहीं होता। कभी अकेले होने का भय नहीं रहता। पढ़ाई, सुखी जीवन, सफलता और सही रास्ता मिलना; सब - अपने आप ही होता जा रहा है। कबीर जी फर्माते हैं -

कबीरा सूता क्या करे, उठके न जपहिं मुरार।
इक दिन सोवन होएगा, लम्बे पैर पसार॥
कबीर जो दिन आज है, सो दिन नहीं काल।
चेति सके तो चेति ले, मीच परी है ख्याल॥

कबीर दास कहते हैं कि जो दिन आज है, आवश्यक नहीं कि कल भी वैसा ही होगा। हर दिन एक समान नहीं होता। सुख दुःख, भला बुरा; कभी भी और किसी भी दिन हो सकता है। अतः समझ सको तो अभी भी समझ लो - चेत जाओ। वरना काल तो तुम्हारे सिर पर बैठा ही है।

मानव शरीर अनमोल है। जन्म जन्मान्त्रों के आवागमण से भयभीत और लाखों

योनियों में भटकते हुये; जब ईश्वर अहैतु की दया करता है – तब कहीं जाकर मानव शरीर मिलता है। किन्तु हम इस 'हीरे' को कौड़ी बराबर भी नहीं समझते। भगवान ने मावव को अति विकसित बुद्धि दी है, ताकि इसका सदुपयोग करके वह संसार के बंधन से मुक्त हो सके। किन्तु हम ने इस बुद्धि को भगवान में न लगाकर, इस संसार में लगा दिया। परिणाम; हम संसार (माया के दलदल) में धंसते गए और प्रभु से दूर होते गए।

भगवान ने हमें अति सुन्दर, प्रेम और भावों से भरा हृदय दिया है, ताकि उस हृदय को प्रभु को समर्पित करके दिव्य प्रेम में सरोबर हो सकें। किन्तु हम ने उस दिल को दुनिया के मिथ्या रिश्ते नातों में लगा दिया। परिणाम;

हम प्रेम के सागर में रहते हुए भी, प्रेम से वंचित रह गए।

इन्द्रिय जगत का ज्ञान; मायावी

प्रस्तुति—श्री महेन्द्र सिंह जांगड़ा (094676-07109)

हर मनुष्य का जीवन, चार तरह की चेतनाओं में बंटा है; निद्रा, स्वप्न, इन्द्रिय जगत और होनी के क्षेत्र की चेतना। इन चार प्रकार की चेतनाओं में पूरी सृष्टि का ज्ञान है। पूर्ण ज्ञान ही ईश्वर है; अर्थात् ब्रह्म है।

मनुष्य ब्रह्म के समान ज्ञानी होने के लिये ही
जन्म लेकर पृथ्वी पर आता है।

तीन चेतनाओं में रहना; अर्द्ध जागृत अवस्था में रहना है। आज के समाज के मनुष्यों की अनुभूति यह है कि – स्वप्न अर्द्ध निद्रा है; और इन्द्रिय जगत की जागृति पूर्ण जागृति है। पूर्ण जागृति आते ही; अर्द्ध निद्रा में स्वप्न की अवस्था में जो भी प्रतीत हुआ, झूठ हो गया।

सत्य यह है कि होनी के क्षेत्र की जागृति, पूर्ण जागृति है।

अतः इन्द्रिय जगत की जागृति भी अर्द्ध जागृति ही है।

इसका अर्थ यह हुआ कि इन्द्रिय जगत का ज्ञान;

जो कि इन्द्रिय की चेतना में उपजता है, झूठा ज्ञान है।

इसीलिये इस ज्ञान को विद्वानों ने मायावी ज्ञान कहा है;

और इस ज्ञान के सहारे जीवन बिताने वाले व्यक्तियों के (दु:ख) का कारण

माया (Ignorance) बताया गया है।

मनुष्य का जीवन पेड़ रूपी है।

जिस प्रकार से बीज को खाद पानी मिलने से, पेड़ केवल आगे ही बढ़ता जाता है; उसी प्रकार से ईश्वर के ध्यान के अभ्यास (Meditation) द्वारा पेड़ रूपी मनुष्य के जीवन के हर अंग या पहलू को अग्रसर करने का जीवन रस (Sap), जिसे प्राप्त हो जाता है; वह अपने जीवन के अनन्त पहलुओं में अग्रसर ही होता जाता है, जब तक उसके मन को परमात्मतत्व पूर्ण रूप से प्राप्त न हो जाए।

समर्पण भाव

जन्म और मृत्यु के अंतराल का नाम जीवन है।

यह जीवन आदमी को बड़े सौभाग्य से मिलता है।

आदमी के लिए यह स्वर्णिम अवसर है।

पर जीवन पाकर मनुष्य बहक जाता है।

जीवन पाने का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य है – आवागमन से मुक्ति पाना। आदमी यहां एषणाओं की पूर्ति में फंस जाता है कि उसे अपना लक्ष्य ही नहीं याद रहता। कोई पुत्र व्यामोह में, कोई वित्त के अर्जन में अनैतिक कार्यों की ओर बढ़ जाता है। जीवन का भयावह पक्ष है –लोकेषणा। इन व्यामोहों के कारण काम, क्रोध, अहंकार, लोभ और मोह से ग्रस्त होकर पुनरपि जननं पुनरपि मरणं की यात्रा करता रहता है।

इस यात्रा से बचने के उपाय सभी धर्म, युगों से देते आए हैं।

ऋषि, मुनि, संत साधन बताते चले आ रहे हैं। परमात्मा को पाने हेतु पहला सोपान 'समर्पण' कहा गया है। बहुत से उदाहरण हैं–जिन्होंने 'समर्पण भाव' से शरणागत होकर अपने जीवन को कृतकृत्य कर लिया है। 'समर्पण' से जितने मानसिक विकार होते हैं–स्वयं ही विसर्जित हो जाते हैं। **आदमी अंतर्मुखी होकर अपनी**

जीवात्मा को और अपने को जान लेता है। जब जीवात्मा साक्षात्कार की मनोदशा साकार होती है –

तब आदमी पूर्णरूपेण अपने को परमचेतना, परमात्मा को अर्पित कर देता है।

समर्पण भाव से ही परमात्म मिलन संभव है।

समर्पण भाव से ही राम की सेवा में रत हनुमान भारत के सर्वमान्य पूजनीय हो गए। संत तुलसीदास जी राम की शरणागत होकर –'सीय राम मैं सब जग जानी' के प्रति समर्पित होकर विश्व कवि महान संत हो गए। मीरा का समर्पण अपने गिरधर गोपाल के प्रति जग जाहिर है –''मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' –'पांव में घूंघरू बांध मीरा नाचती रही। अत: जन्म मरण से मुक्त होने का सरल उपाय है –

अपने को ईश्वर की शरण में समर्पित कर देना।

परमात्मा को भक्ति से पाया जा सकता है, युक्ति से नहीं।

यदि हम ईश्वर के प्रति समर्पित हैं तो प्रभु हमारा कल्याण अवश्य करेंगे। हम जितनी ही अपनी श्रद्धा को बलवती करेंगे; उतना ही हम अपने आत्मबल को बलवान बनायेंगे। हमारी श्रद्धा जितनी ही सजल होगी – हम अपने लक्ष्य के उतने ही निकट होंगे – चाहे वह प्रभु मिलन की बात हो – या किसी आत्मीयजन को पाने का सुख। किसी के प्रति असीम आदर का प्रतीक है – श्रद्धा;

जिसमें समर्पण भी समाहित है। ❐

ध्यान; मन की मृत्यु

—श्रीमती गुंजन गोयल (098962-69674)

हमारा परमपिता परमात्मा, हमारे भीतर ही है; और हम उसको बाहर ढूंढते रहे हैं। बहुत चालाक है यह मन; जो हमें हमारे भीतर, हमारे घर में ही नहीं जाने देता। इधर उधर भटकाता रहता है। जैसे ही हम भीतर जाने लगते हैं, वह डरने लगता है और हमारा ध्यान खंडित करने की कोशिश करता है – ताकि मन की मलकयित बनी रहे और हम उसकी गुलामी में ही अपनी जिंदगी बिता दें। बाहर हम कितना भी जप, तप, पूजा पाठ करते हैं – सब व्यर्थ है; जब तक हम भीतर बैठे परमात्मा को

पा नहीं लेते। बाहर के पूजा पाठ से मन का सिंहासन जमा रहता है और उसका अहंकार बढ़ता है।

जैसे ही हम भीतर जाने लगते हैं – मन को अपनी मौत नजर आने लगती है और वो कुछ-न-कुछ करके हमारा ध्यान भटकाता चला जाता है।

प्रार्थना का सही अर्थ तो है कि हम अपनी आंखें बंद करके भीतर भगवान को खोजें; और मन से हटकर उस परमात्मा से मिलन करें।

जो हमें परमात्मा ने दिया है; उसको चढ़ाने का क्या फायदा?

हमारा मन; जिसे हमने खुद अहंकारी बनाया है; परमात्मा को तो उसे ही चढ़ाने से बात बनेगी। हम उस परमपिता को पाने के लिए कितने ही क्रिया कांड करते चलते जा रहे हैं? इन सब चीजों से तो हम अपने हृदय द्वार पर बैठे परमात्मा को ही अपने से दूर करते जा रहे हैं। उस परमात्मा को बाहर नहीं, भीतर खोजो। वह ही तो है – हमारे भीतर; जो सब करवा रहा है। उसके बिना तो हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं है।

वजह मालूम हुई तुमसे, न मिलने की भगवन्।
मैं खुद ही परदा था, मुझे मालूम न था॥ ❐

आत्मिक शक्ति ही; सुख दाता

—प्रस्तुति : श्री सतनारायण शर्मा (09416164702)

जब भी मन पृथ्वी लोक पर आता है; उसे दो प्रकार की शक्तियां अपनी ओर खींचती रहती हैं – पहली आत्मा की शक्ति, जो मनुष्य को अन्तर्मुखी करती है और दूसरी शक्ति इन्द्रिय जगत के विषयों की-बुद्धि है; जो मनुष्य को बहिर्मुखी करने में तत्पर रहती है।

आत्मा की शक्ति ही जीवन के सारे सुख, जीव को प्रदान करती है। विपरीत दिशा में मन को खींचने वाली शक्ति-बुद्धि; मन को केवल दुख प्रदान कर सकती है; सुख नहीं।

आज के समाज का हर व्यक्ति अपनी अपनी बुद्धि को, अपने जीवन को सुख देने वाला समझता है। इस गलत फहमी (Ignorance) को ही शास्त्रों में माया

(Illusion) कहा गया है। अगर समय का इतिहास देखें – तो सतयुग का समाज सबसे अधिक अन्तर्मुखी था और सुखी था। त्रेता, द्वापर और कलियुग में मनुष्य की बहिर्मुखी प्रवृत्ति में विकास होता चला गया। सबसे अधिक मनुष्य बहिर्मुखी –विज्ञान के युग में हुआ। ज्यों ज्यों बहिर्मुखी प्रवृति में बढ़ोतरी हुई, त्यों त्यों इन्द्रिय जगत के विषयों की चेतना बढ़ी। बढ़ती हुई इन्द्रिय जगत के विषयों का ज्ञान, मनुष्य को जीवन में सुखों का लालच देकर; जीवन को मात्र दुख देता रहा। ऐसा समय के इतिहास में प्रमाणित हो चुका है।

ज्यों ज्यों बाहर के विषयों का ज्ञान बढ़ा, त्यों त्यों उस ज्ञान के फल पर विश्वास बढ़ा। इस विश्वास ने मनुष्य को; और बहिर्मुखी बनाया।

> **इस विश्वास को सन्त तुलसी दास ने रूलाने वाली शक्ति-अर्थात् रावण कहा। यह विश्वास मनुष्य को अन्तर्मुखी होने से रोकता रहा। इस विश्वास के कारण ही मनुष्य, बाहर की बुद्धि का प्रयोग, जीवन में अधिक करता रहा।**

साधकगण अच्छी तरह जानते हैं कि बाहर के हर कर्म की अन्दर के क्षेत्र में स्थित मन पर एक छाप पड़ती है। इस तरह से बाहर के कर्मों का प्रभाव, जो कि जीवन को दुखी बनाकर मन को रूलाता है; आन्तरिक क्षेत्र में प्रवेश कर गया।

मन को सुख देने वाला क्षेत्र, आन्तरिक क्षेत्र-स्वर्ग है। बाहर का क्षेत्र, जिस ओर दुख देने वाली शक्ति-बुद्धि; मन को खींच रही है; नर्क है। इस तरह देखना आसान है कि नर्क का अधिकार स्वर्ग पर कैसे बढ़ा।

> **मन, स्वर्ग का निवासी है। परन्तु निम्न चेतना के कारण अपनी बुद्धि को अपना मित्र मानकर, इन्द्रिय सुख बढ़ाने के लालच में, बहिर्मुखी होकर; इन्द्रिय जगत में भ्रमण अधिक करता है। भ्रमण की छाप मन पर, आन्तरिक क्षेत्र में-आन्तरिक क्षेत्र को दुखी बना देती है। इस तरह स्वर्ग में रहने वाले जीव का जीवन, नर्क के दुखो से प्रभावित हो जाता है।**

आन्तरिक क्षेत्र में बाहर के कर्मों का प्रभाव बढ़ता ही जाता है। आने वाले दिनों के

छाप-पिछले छापों के ऊपर चढ़ जाते हैं। वास्तव में वह जीवन कैंसर दमा जैसी उग्र (Acute) बीमारियों से पीड़ित होता है।

जीवन का ज्ञान उभारना; अत्यंत सरल

हमारी अनुभूति है कि इन्द्रिय जगत के विषयों से ज्ञान का रास्ता अत्यन्त कष्टदाई है; परन्तु

> **अपने में चेतना का विकास करके जीवन का ज्ञान उभारना अत्यन्त सरल है।**

यह थकाने वाला नहीं है; और मात्र जागते हुए गहरे आराम से उभर आता है।

चेतना की अनुभव शक्ति ही आत्म प्रकाश है।

साधना द्वारा ज्यों ज्यों हम अपने जीवन को उच्च स्तर की चेतना के प्रकाश से प्रकाशित करते हैं, त्यों त्यों जीवन आत्म सुख से भरने लगता है। आत्म प्रकाश से प्रकाशित मन की समस्याओं का हल, मन को बिना किसी प्रयास के मिल जाता है। धीरे धीरे जीवन सरल और आनन्दमय होने लगता है।

सत्-चित्-आनन्द; ब्रह्म दे, सेवा दे सुख खण्ड।
खण्ड अन्त में दुखद है, साधक ग्राह्य अखण्ड॥

जीवन के सारे सुखों का आधार-सत् की शक्ति है। सम्पूर्ण सृष्टि में अलग अलग प्राणियों की अनुभव की शक्ति तथा उनका आन्तरिक सुख मन को, ध्यान के समय प्राप्त ब्रह्म तत्व की देन है। इसकी कमी में लाभ की दृष्टि से या किसी हानि से बचने के लिए, छोटी छोटी खण्ड सेवाओं द्वारा सुख देने का प्रयास-खण्ड की अनन्त शक्तियों में से एक है। लेकिन सत्-चित्-आनन्द तो अखण्ड शक्ति की है।

> **यदि जीवन का आधार अखण्ड की उक्त शक्ति हो, तभी खण्ड की शक्तियां भी दुख से रहित; अर्थात् सुखदायी होती है।**

बिना उस साधना को अपनाए – जिसके द्वारा अखण्ड की शक्ति बढ़ती है, सारी खण्ड शक्तियां सीमित सुख देने के बाद अन्त में दुखद हो जाती हैं। इसीलिए

साधक के लिए अखण्ड की शक्ति उपलब्ध कराने वाली ध्यान की साधना ही अपनाने योग्य है।

इन्द्रिय जगत की चेतना में जीवन बिताने वाले गलतफहमी (Ignorance) वश विषयों के ज्ञान में सुखी जीवन का ज्ञान ढूंढ़ने में व्यस्त रहते हैं।

इस गलत व्यस्तता के कारण उनकी चेतना का प्रकाश बढ़ना रूक जाता है।

चेतना के आत्म प्रकाश बढ़ने का मूल कारण होता है -

प्रयासहीन अवस्था में; अपने में मन का विचरण।

परन्तु उच्च स्तर के विषयों के ज्ञान का आधार बुद्धि के अधीन विषयों के क्षेत्र में मन का विचरण होता है।

विषयों के क्षेत्र में बुद्धि के अधीन मन का विचरण होने से मन शारीरिक थकावट अनुभव करता है और यह शारीरिक थकावट - आत्म प्रकाश को ढकता है। इस आत्म प्रकाश में जीवन के सुख का ज्ञान होता है।

अत: जीवन का दु:खी होना स्वाभाविक हो जाता है। सन्त तुलसीदास ने रामायण में लिखा है - पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं। परन्तु तीन चेतनाओं में जीवन बिताने वाले मनुष्य जीवन को देखें, तो आसानी से समझ में आता है कि उनका मन अधिकतर बुद्धि (रावण) की गुलामी ही करता रहता है और यही उनके दु:खी जीवन का मुख्य कारण है। आज के युग के अधिकतर आध्यात्मिक गुरु भी कुछ प्रयासपूर्ण साधनाएं बता देते हैं।

प्रयास, बिना बुद्धि के संभव नहीं।

जब बुद्धि मन को गुलाम बनाती है - तभी जीवन में प्रयास उभरता है और ऐसे प्रयास भरे कर्म जब जीवन में बढ़ते हैं; तभी जीवन दु:खी जीवन की ओर बढ़ता है।

पराजगत दो भागों में बांटा है। पहला विचारों का सागर और दूसरा निराकार तत्व का सागर। मन का निवास, विचारों का सागर है। सूक्ष्म क्षेत्र में विचरण

करते करते मन का निवास स्थान, विचारों के सागर की सूक्ष्म पर्तें होने लगती हैं। ऐसे मन सूक्ष्म मन कहलाते हैं और

उन्हें सूक्ष्म क्षेत्र की शक्ति मिल जाने के फलस्वरूप;

उनकी इच्छाएं और अधिक सरलता से पूरी होने लगती हैं।

परन्तु जो मन अधिकतर इन्द्रिय जगत में विचरण करते हैं, उनका निवास स्थान विचारों के सागर की सतह के समीप रहता है और ऐसे मन का जीवन शक्तिहीनता की ओर अग्रसर होता रहता है। ऐसे मन के जीवन में आयु बढ़ाने के साथ साथ प्रयासपूर्ण शारीरिक कर्मों की अधिकता होने लगती है। ❑

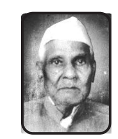

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-3 : **इच्छा पूर्ति शक्ति है, वह सर्वज्ञ समर्थ।**
बिन मांगे ही देत है, काम धर्म औ अर्थ॥

वह परमात्मा सब कुछ जानता है। सब कुछ करने में समर्थ है। हमारे बिना मांगे ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दे देता है। परमात्मा आन्तरिक जगत का सूर्य है और उसकी शक्ति सूर्य की रोशनी है। यह रोशनी मन और मन की वस्तुओं को ठीक उसी प्रकार मिलती है - जिस तरह से बाहर के सूर्य की गर्मी और प्रकाश पृथ्वी और पृथ्वी की वस्तुओं को मिलते हैं।

मन की वस्तुओं का तात्पर्य मन की इच्छाओं से है।

मन की तुलना पृथ्वी से की गई है। मनुष्य की इच्छ्ज्ञएं आन्तरिक जमीन (मन) में बीज रूप में होती हैं। आन्तरिक सूर्य (ब्रह्म) की शक्ति इस बीज रूपी इच्छाओं को पूरा करने (फल) तक विकसित करने में सक्षम है। इसीलिये इस दोहे में कहा गया है कि - ब्रह्म, जो सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ है, इच्छा-पूर्ति की प्रार्थना किये बिना ही, साधक की सभी इच्छाओं को पूरा करता है। इच्छाएं ही बीज हैं; और उनकी पूर्ति ही फल। मनुष्य की इच्छाओं को अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के अन्तर्गत रक्खा गया है - जिनकी पूर्ति ब्रह्म की शक्ति करती है। गोस्वामी

तुलसीदास जी के '**ललहिं चारि फल अछत तनु**', कहने का आधार भी यही है।

दोहा-4 : इच्छा सब पूरी करे, प्रभु की लीला शक्ति।

ध्यानयोग महिमा अमित, मिले राम की भक्ति॥

ब्रह्म की लीला शक्ति हमारी सब इच्छाओं को पूरा करती है। ध्यान साधना की महिमा महान है। इससे भगवान की भक्ति मिलती है। बाहर के जगत में बीज रूपी इच्छा किस रास्ते द्वारा फल रूपी इच्छा पूर्ति तक पहुंचेगी? कहने का तात्पर्य यह है कि पेड़ का तना, डालियां कैसी होंगी? पत्तियों की बनावट कैसी होगी? फूल किस रंग के होंगे? डालियों में कांटे होंगे या नहीं, इत्यादि बातें पेड़ का रस ही तय करेगा – जिसे जड़; खाद पानी इत्यादि से तैयार करती है। इच्छाओं की पूर्ति में इस प्रकार का विस्तार कैसे होगा? इसे बताने में बुद्धि असमर्थ है और बाहर की कोई व्यवस्था भी ऐसा नहीं कर सकती। आन्तरिक सूर्य (ब्रह्म) की शक्ति किस इच्छा की पूर्ति, किस रास्ते (माध्यम) द्वारा करेगी? यह ब्रह्म की शक्ति ही (जो जीवन का रस है), तय करेगी। भिन्न भिन्न प्रकार की इच्छाओं की पूर्ति के मार्ग-क्रिया-कलाप को निर्धारित और वांछित गति देने वाली ब्रह्म की शक्ति को ही लीला शक्ति कहते हैं।

ध्यान योग की महिमा इतनी बड़ी है कि इस साधना से ब्रह्म के सत्, चित् और आनन्द के गुण जिस अनुपात में मन को प्राप्त होते जायेंगे, ब्रह्म की लीला शक्ति अपनी योजनानुसार मन की इच्छाओं की पूर्ति उसी अनुपात में करती जायेगी। ब्रह्म के इन गुणों की उपलब्धि की उच्च अवस्था ही राम (ब्रह्म) की भक्ति कहलाती है। जिस अवस्था को प्राप्त करने पर सपने में भी किसी भी प्रकार के दुख की संभावना नहीं रहती –गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार –

राम भगति मनि उर बस जाके।

दुख लवलेस न सपनेहुं ताके॥

जैसे धूप में बैठने से सूर्य की गर्मी तथा रोशनी हमें स्वयंमेव प्राप्त हो जाती हैं, वैसे ही राम (ब्रह्म) की भक्ति (सम्पर्क) से ब्रह्म के सभी गुण – अखण्ड स्वास्थ्य, अखण्ड शक्ति, अखण्ड प्रेम, अखण्ड ज्ञान एवं अखण्ड आनन्द प्राप्त हो जाते हैं। अत: ये सब कुछ प्राप्त होने के पश्चात् तो स्वप्न में भी दु:ख की अनुभूति नहीं होगी और जीवन आनन्द मग्न व्यतीत होगा। दु:ख का कारण ही समाप्त हो जाएगा। ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 50/- (पचास) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश; अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-श्री राकेश गर्ग, केशव लैस इम्पोरियम,
दुकान नं० 91, लाजपतराय (रेहड़ी) मार्केट, हिसार-125001
मोबाईल : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार के जपकक्ष में प्रात: 11.00 बजे से 12.30 बजे एवं प्रतिदिन सायं 4 से 5 बजे सामुहिक ध्यान प्रयोगात्मक और उसी मन्दिर में प्रति रविवार पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 5 बजे से सायं 7 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन स्टेट-2, हिसार-125005
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER